09 देखना सीखना, इन्द्रियों को जगाना

जिनान

शिक्षा की मौजूदा मुख्य धारा के बारे में चिन्ता का मुख्य विषय यह है कि वह रचनात्मकता को मारती है।

जिस उन्माद के साथ "कला" को लाया जा रहा है उससे लगता है कि इस नुकसान की भरपाई की कोशिश की जा रही है। लेकिन 'स्कूलिंग' न केवल रचनात्मकता को मारती है, वह प्रामाणिकता को, सांस्कृतिक विविधता को और सौन्दर्यबोधी संवेदना को भी मारती है।

यह बात देखने लायक है कि कला, वास्तुकला और डिजाइन के शिक्षण का इस देश में क्या प्रभाव पड़ा है। इससे हमें सबक मिल सकते हैं कि हमें स्कूलों में क्या नहीं करना चाहिए।

जहाँ तक भवन निर्माण, संकेत चिह्नों, उत्पादों, रंगों के इस्तेमाल और विज्ञापन के लिए लगे बोर्डों की बात है, संसार भर में अब एक ही तरह का नजारा देखने को मिलता है। लगभग एक सदी पहले तक संस्कृतियों में भिन्नता दिखाई देती थी, जीने के अन्दाज अलग–अलग थे, सौन्दर्यानुभूति से जुड़ी संवेदनाएँ भी भिन्न थीं–और इस सबसे एक सन्दर्भित वास्तुकला और कलाकृतियाँ देखने को मिलती थीं। वर्तमान शिक्षा ने सम्पूर्ण संसार में समरूपता पैदा कर दी है। डिजाइन तथा वास्तुकला–शिक्षा को विविधता की बरबादी में भूमिका निभाने वाले सबसे विनाशकारी कारकों में से एक कहा जा सकता है, और इसी के चलते जीवन–शैलियाँ भी एक सी हो गई हैं। पश्चिमी संस्कृति के अनुभवों–बौहौस, उल्म (बीसवीं सदी के दूसरे दशक में जर्मनी में स्थापित किया गया प्रथम डिजाइन शिक्षा संस्थान)–के आधार पर लिए गए पाठ्यक्रम विश्व भर में डिजाइन–शिक्षा की बुनियाद में हैं, और इसने मनोवैज्ञानिक तौर से हमारे अस्तित्व को कई स्तरों पर नुकसान पहुँचाया है–पश्चिम की नकल, हीन भावना, सांस्कृतिक स्तर पर संवेदनहीनता तथा अन्य किस्म के बोधात्मक नुकसान।

यह बात कला–शिक्षा के लिए भी सच है। आज भी मूल प्रेरणा पश्चिम में कला के आन्दोलनों से ली जाती है। कला–शिक्षा के अधिक औपचारिक होने के साथ ही उसमें एक कठोरता और गैर–लचीलापन भी आता जा रहा है; अधिक ध्यान नियमों, सूचनाओं, इतिहास आदि पर दिया जा रहा है। इससे भी अधिक भ्रामक बात यह मानना है कि कला–शिक्षा का रचनात्मकता तथा सुन्दरता के साथ सम्बन्ध है, मानो बाकी विषयों का रचनात्मकता से कोई सम्बन्ध न हो और उनका खूबसूरती से कोई सरोकार न हो।

सुन्दरता, ज्ञान और रचनात्मकता की केन्द्रीय भूमिका सभी प्रामाणिक संस्कृतियों की एक अलग से दिखाई देने वाली विशेषता रही है। इसलिए असल मुद्दा यह समझने का है कि कैसे अपनी सांस्कृतिक जड़ों को बनाए रखा जाए, कैसे शिक्षार्थी को खूबसूरती की उस मूल, प्रामाणिक भावना और समझ के साथ बने रहने में मदद की जाए जो सही अर्थों में उस असल सन्दर्भ के अनुभव पर आधारित हो जिसमें वह जी रहा है।

तो हम कुछ बुनियादी सवालों से शुरुआत करते हैं।

जीवन में खूबसूरती का उद्देश्य क्या है? उसे कैसे विकसित किया जाता है? क्या वह स्वाभाविक और जन्मजात है? ज्ञान के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? या, बोध के साथ यह कैसे सम्बद्ध है? क्या इन्द्रियाँ इसमें कोई भूमिका अदा करती हैं? मौजूदा शैक्षिक व्यवस्था में अनुभूति की क्या भूमिका है? प्रामाणिकता क्या है? और मौलिकता क्या है? प्रामाणिक न होने का हमारे

द्वारा किए जाने वाले किसी भी काम पर या बनाई गई किसी भी चीज पर क्या प्रभाव पड़ता है? संस्कृति क्या है और इसका निर्माण कैसे होता है? सुन्दरता, रचनात्मकता और संस्कृति के बीच क्या सम्बन्ध है? संस्कृति किस प्रकार रचनात्मकता और खूबसूरती के फलने–फूलने के लिए माहौल बनाती है? हममें सुन्दरता की अनुभूति जगाने के लिए क्या कला–शिक्षण की जरूरत है या वह हमारे अस्तित्व में स्वाभाविक तौर पर, जन्मजात मौजूद है?

भारत के नैशनल इंस्टीट्यूट ऑफ डिजाइन (NID) में अध्ययन के दौरान मैंने खूबसूरती, सौन्दर्यानुभूति, रचनात्मकता, संस्कृति, सहज–स्वाभाविक प्रवृत्ति से सम्बन्धित कुछ बुनियादी सवालों की जाँच–पड़ताल शुरू की।

इस संस्थान में डिजाइन सीखने की प्रक्रिया पूरी तरह से पश्चिम–प्रवृत्त है। डिजाइन या सौन्दर्यानुभूति की समझ पैदा करने के लिए जिम्मेदार पाठ्यक्रम, जिनमें डिजाइन के तत्व, संरचना, रंग–रूप–आकार आदि शामिल हैं, अब भी बौहौस पर आधारित हैं और आज भी यह सब लगभग पहले ही की तरह पढ़ाया–सिखाया जाता है। द्वंद्व भरे एक समयकाल के बाद इंस्टीट्यूट में बिताए गए मेरे तीन साल खुद की गहन तलाश के साल रहे। यह बात बहुत ही स्पष्ट तौर पर केन्द्र में आई कि औपचारिक स्कूली–शिक्षा का उपनिवेशित, गुलाम दिमागों तथा सांस्कृतिक और आध्यात्मिक विलगाव के साथ सीधा सम्बन्ध है; इंस्टीट्यूट की 'शैक्षिक व्यवस्था' मेरे लिए इसी की एक मिसाल थी। यदि खूबसूरती की आपकी समझ और अनुभूति संचालित और अनुकूलित हो, गुलाम मानसिकता लिए हुए हो, तो संस्कृति के अर्थ ही क्या रह जाते हैं और किस चीज को आप अपना कह सकते हैं?

शिक्षा लोगों को अनुकूलित करने और गुलाम बनाने का सबसे शक्तिशाली औजार रहा है क्योंकि इसने दुनिया भर में तथाकथित शिक्षित लोगों की विश्व दृष्टि को पूरी तरह से पलट दिया है। स्कूली शिक्षा ने धार्मिक अन्धविश्वास के स्थान पर बस वैज्ञानिक अन्धविश्वास को जगह दे दी। उसने हमें अलग तरह की आस्था रखने वाला बना दिया; हमें सक्रिय रचनाकर्ताओं और ज्ञान के आविष्कारकों के स्थान पर लिखित पाठों और विशेषज्ञों के निष्क्रिय भक्तों में तबदील कर दिया। अब हम संसार को जानने के लिए अपनी इन्द्रियों, भावनाओं और अनुभव को प्रयोग में नहीं लाते।

यह बात इस देश की सब शैक्षिक संस्थाओं के बारे में कही जा सकती है। हमारे अस्तित्व के सभी पक्ष इस भ्रमपूर्ण अनुकूलन के अन्तर्गत आ गए हैं। जहाँ तक सूचना और जानकारी का सवाल है, हम जो भी सीखते हैं, पश्चिम के बारे में ही होता है। हमारी भावना स्वयं को पश्चिम से कम मानने की है, हम हीनता के शिकार हैं। हम पश्चिम का अनुकरण करते हैं और हमारी सौन्दर्यानुभूति भी परिवर्तित हो जाती है क्योंकि हम सौन्दर्य की पश्चिमी समझ को ही सीखते हैं। इसके साथ–साथ स्कूलों में ज्ञानार्जन की प्रक्रिया एक शिक्षार्थी की सब सच्ची विशेषताओं को बरबाद कर देती है। हम प्रतियोगी होना, झूठ बोलना, छल करना, स्वयं को ही आगे रखना सीखते हैं। डिजाइन का विद्यार्थी होने के नाते मैं स्वयं से सवाल करता था–मैं अपनी संस्कृति का सच्चा प्रतिनिधि कैसे बन सकता हूँ? और इसी से यह सवाल भी उठा कि संस्कृति क्या है? सौन्दर्यानुभूति और

संस्कृति, बोध और संस्कृति में क्या सम्बन्ध है?

इस देश के निरक्षर कारीगरों और बच्चों ने मुझे सुन्दरता को समझने में मदद की है।

मैं पिछले बीस साल से भी अधिक समय से ग्रामीण तथा जनजातीय समुदायों के बीच रह रहा हूँ। मैं उनके पास उन्हें 'विकसित करने' या शिक्षित करने के इरादे से नहीं गया था। मैं उनके पास अपनी सांस्कृतिक जड़ों को फिर से पाने के लिए गया था, जिन्हें मैं अपने शिक्षित होने की प्रक्रिया में खो चुका था। मैं उनसे सीखने के लिए गया था। क्योंकि 'शिक्षा' और 'विकास' से बचे रहने की वजह से वे अब भी सच्चे–खरे और अपने मूल रूप में ही हैं; वे अब भी उसी विश्व दृष्टि और संस्कृति को अपनाए हुए हैं जिसने उन्हें सदियों से जीवित रखा है।

यह अद्वितीय दृष्टिकोण मेरे लिए जनजातीय समुदायों की एक अलग तसवीर पेश करता है, और वे मुझे बुद्धिमान और विकसित दिखाई देते हैं; उनसे सीखकर ही हम एक निरन्तर टिकाऊ जीवन जीना सीख सकते हैं। परम्परागत ज्ञान को समझ पाना मेरे लिए बहुत मुश्किल रहा है क्योंकि समझ के मेरे ढाँचे पश्चिमी और तर्क–प्रवृत्त हैं। अपने दिमाग को औपनिवेशिक जकड़ से मुक्त करने और स्वयं की प्रामाणिकता को फिर से पाने की प्रक्रिया में मैं गैर–साक्षरों (इन्द्रीय साक्षरों) को जानने या उनके बीच रहने की प्रक्रिया की कुछ झलकें हासिल कर पाया हूँ।

सबसे महत्त्वपूर्ण सीख यह रही है कि सुन्दरता, बोध और मूल्य जन्मजात होते हैं, हमारी शरीर–क्रिया संरचना में स्थित होते हैं और हम इस संसार में सही हालात में हों तो ये विशेषताएँ जागृत हो जाती हैं। औपचारिक–अनौपचारिक 'शिक्षण' न हो तो भी साँस लिए जाने की ही तरह सीखने की प्रक्रिया जारी रहती है।

हस्तकारों के साथ नए डिजाइन बनाने की प्रक्रिया में मुझे इस बात का एहसास हुआ। मेरा मानना था कि सब लोग रचनात्मक होते हैं और यह भी, कि पश्चिमी संवेदना और अनुभूति का डिजाइनर होने के नाते मेरे डिजाइन से तो बात बिगड़ेगी ही। इसलिए मैंने ऐसी स्थितियाँ बनानी शुरू कर दीं जिनमें हस्तकार स्वयं डिजाइन बनाएँ और नए उत्पाद विकसित करें। और उन्होंने जो कुछ भी बनाया वह बहुत ही सुन्दर था–और मौलिक भी। इसकी वजह से मैंने हस्तकारों के समुदायों में सीखने की प्रक्रिया को और गहराई से देखना शुरू किया।

जो भी मैंने वहाँ देखा वह उस सबसे बिल्कुल उल्टा था जो हम तथाकथित शिक्षित और सभ्य लोग करते हैं।

बच्चे अपना हुनर शिक्षण या औपचारिक, व्यवस्थित ज्ञानार्जन की वजह से नहीं सीखते बल्कि खेलते हुए और वयस्कों के कृत्यों का स्वत: स्फूर्त अनुकरण करके सीखते हैं। मैंने पाया कि वे अच्छी कल्पनाशक्ति, रचनात्मकता, पक्का इरादा और निपुणता लिए हुए बहुत अच्छे पर्यवेक्षक हैं। अनुभूति और अन्दाजे का प्रयोग उनके लिए सीखने का मुख्य माध्यम है। हम वयस्कों की आदत के विपरीत, शब्दों का वे कम से कम प्रयोग करते हैं। सीखने की बुनियाद करना और अनुभव होते हैं। उनके पास पूर्ण स्वतंत्रता होती है और इसलिए बच्चों की आन्तरिक स्वायत्तता और पहलकदमी उनके द्वारा किए जाने वाले प्रत्येक काम में दिखाई देते हैं।

'ज्ञान' की आधुनिक व्यवस्था और गैर–साक्षर के 'जानने' में मुख्य अन्तर इस बात का है कि हम संसार को शब्दों, तर्क, और एक ऐसे विशेषज्ञ के माध्यम से जानते–समझते हैं जिसे एक 'मार्गदर्शक', एक संज्ञा के रूप में जाना जाता है जबकि वे संसार को अन्तर्ज्ञान और अन्दाजे से, बिना

गैर–साक्षर ग्रामीण महिला लक्ष्मी द्वारा बनाई कृतियाँ

पथ–प्रदर्शन के, या अपनी पहलकदमी से और एक क्रिया के रूप में संसार को जानते–समझते हैं।

ऐसा लगता है कि आधुनिक शिक्षा ने स्वाभाविक, प्राकृतिक प्रक्रिया को उलट दिया है और संसार को समझने के लिए बोधात्मक ढाँचे को पुन:निर्मित कर दिया है। तार्किकता, जो प्राकृतिक, स्वाभाविक प्रक्रियाओं में जानने का अन्तिम उत्पाद है, आधुनिक ज्ञान की प्रक्रिया में उसे समझ बनाने और संसाधित करने के लिए प्रयोग किया जाता है। अन्तर्ज्ञान और अन्तर्दृष्टि की कोई भूमिका नहीं है।

'प्रकृति को महसूस करना, प्रकृति को जानना' कार्यशाला अरुवाकोड, निलम्बार में गर्मियों की छुट्टियों में लगाई जाती रही है। अप्रैल और मई में कुम्हार बस्तियों के बच्चों के साथ इस कार्यशाला में इन्द्रियों और स्वायत्तता के महत्त्व को समझने, उसका एहसास होने पर बात की जाती थी। मेरा काम तो न्यूनतम सुविधा प्रदान करने वाले बस एक चपरासी का था जो उन्हें वे चीजें देखने की प्रक्रिया में डालता था जो वे आमतौर पर नहीं देखते हैं। यह काम मैं निर्देश देकर नहीं सिखाता था बल्कि स्वयं करके दिखाता था।

इस कार्यशाला से हम जिन बुनियादी मुद्दों को उठाते हैं वे हैं सीखने की प्रकृति, बच्चों में शारीरिक तौर पर पहले से पक्के तौर पर मौजूद और जड़ी हुई सौन्दर्यानुभूति, 'शिक्षक' की भूमिका आदि।

प्रतीत होता है कि हम पहले से ही सौन्दर्यानुभूति और समझ के साथ पैदा होते हैं।

यह कार्यशाला बस इसलिए है कि सुनने, देखने, चखने, छूने, महसूस करने, बनाने आदि के लिए एक स्थान मुहैया रहे। इसमें किसी प्रकार का शिक्षण नहीं होता है।

लेकिन कला–शिक्षा भी ऊपर से नीचे कुछ परोसे जाने तथा सूचना और जानकारी पर आधारित होती जा रही है; बच्चों से तथाकथित उस्तादों, माहिर कलाकारों आदि से सम्बद्ध विवरण याद रखने की अपेक्षा रहती है। मुझे एक बार एक स्कूल के बारे में पता चला जहाँ वैन गोक के चित्रों को नकल करने के लिए कहा जा रहा था। युनाइटिड किंगडम में कला–शिक्षा की यही प्रवृत्ति है। जाँचा जाता है कि बच्चे मोने, पॉल क्ली आदि कलाकारों की कृतियों को पहचान पाते हैं या नहीं। कला को इतिहास में परिवर्तित किया जा रहा है।

स्कूल की पाठ्यचर्या में कला अकेली ऐसी गतिविधि है जिसमें अन्य विषयों द्वारा पहुँचाई गई क्षति को पलटने की सम्भावना और ताकत मौजूद है।

स्कूल एक अजीब ही स्थान है जहाँ बच्चों को 'अतीत' में हुई बातों के बारे में सिखाकर दूरगामी 'भविष्य' के लिए तैयार किया जाता है। (उन्हें अलग तरह के इतिहासकारों के रूप में या जानकारी और सूचनाओं के अलग–अलग नाम वाले डिब्बों–विज्ञान, अँग्रेजी, सामाजिक, गणित आदि–के तौर पर तबदील कर दिया जाता है)।

सीखने के लिए या इस संसार को समझ पाने के लिए बच्चों को जो कुछ भी घटित हो रहा है, उस सबसे सम्बन्ध बनाने की जरूरत है।

मेरे विचार से 'कला'–शिक्षा में यह सम्भावना और ताकत है कि वह बच्चों को प्रामाणिक तथा मौलिक शिक्षार्थी/रचनाकार बनाए–विशेष तौर से तब जब उसे समझ और अनुभूति जगाने और शिक्षार्थी के जीवन–सन्दर्भ से सम्बन्ध बनाने के रूप में लिया जाए।

प्रत्येक पीढ़ी को अपने आसपास के यथार्थ से सम्बद्ध होते हुए अपनी सांस्कृतिक सुरुचियों के कुछ पक्षों को पुन: जीने, सीखने, रचने और गढ़ने की आवश्यकता रहती है। एक सन्दर्भ में मूलबद्ध सौन्दर्यबोधी समझ ने ही कभी संसार भर में भिन्न–भिन्न संस्कृतियों को पैदा किया।

हमारी इन्द्रियाँ बाहर के ही नहीं हमारे भीतर के संसार का भी द्वार हैं। उनसे सम्बोधित होना जरूरी है और वह भी इस तरह कि सब इन्सानों में निहित, स्वाभाविक, शरीर–विज्ञानी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिल पाए।

रंगीन कागज से बना कोलाज

सुरुचि और संवेदना एक तरह से इन्द्रियों और भावनाओं को जागृत करने का मसला है।

सौन्दर्यबोधी समझ और रचनात्मकता को जागृत करना और उसका विकास न केवल कला के सब रूपों का आधार है बल्कि हमारी सब गतिविधियों की केन्द्रीय विशेषता भी है।

गीत गाने, रेखा–चित्र बनाने और रंग भरने की दक्षताएँ सिखाने की बजाए यह जागृति पैदा की जाए तो एक गुणात्मक बदलाव आएगा, रवैये में भी परिवर्तन होगा। केवल कौशल के सिखाने से तो शिक्षार्थियों को मात्र बाहरी रूप पर ध्यान केन्द्रित करने में मदद मिलती है और बहुत बार वे बिना किसी विषयवस्तु के रह जाते हैं। प्रामाणिकता के साथ देखने से विषयवस्तु पर ध्यान देने में मदद मिलती है।

असली काम यह देखने का है कि हम जो कुछ भी करते हैं, उसमें सुन्दरता और रचनात्मकता से कैसे सम्बोधित हुआ जाए – फिर वह चाहे गणित हो या भौतिक विज्ञान या इतिहास।

इससे भी बड़ी चुनौती है ऐसा वातावरण उपलब्ध करवाने की जो हममें मौजूद स्वाभाविकता को आगे आने की इजाजत दे।

इसके लिए संवेदनशीलता और भरोसा होना तथा ध्यानपूर्वक योजना बनाना जरूरी है जिससे वह भी हो पाए जिसकी योजना नहीं थी।

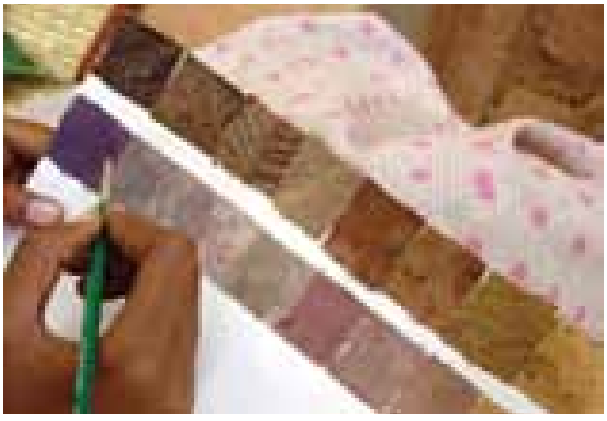

बच्चों की कला

राख तथा मिट्टी से बनी ज्यामिति आकृति

सन्दर्भ सूची

मुख्य लेख ग्रामीण जनजातीय समुदायों के साथ जीने के मेरे व्यक्तिगत अनुभव पर और यह समझने के लिए किए गए शोध और दस्तावेजीकरण पर आधारित है कि बच्चे और गैर–साक्षर हस्तकार कैसे सीखते हैं। इन मुद्दों को समझने में मुझे कई दार्शनिकों, वैज्ञानिकों, चिन्तकों और शिक्षकों से मदद मिली है। इनमें निम्नलिखित प्रमुख हैं:

- van Illich, Dr. Humberto Maturana (the Chilean School of Biology of Cognition),
- Semir Zeki , professor of Neuroesthetics at University College London.
- Ellen Dissanayake, Affiliate Professor, School of Music, University of Washington
- Vilayanur Ramachandran Director of the Center for Brain and Cognition, Professor in the Psychology Department and Neuro-sciences Program at the University of California, San Diego, and Adjunct Professor of Biology at the Salk Institute for Biological Studies.

जिनान *गैर–साक्षर हस्तकारों के साथ लगभग 20 साल तक रहे हैं और उनके साथ काम किया है। इस दौरान उन्होंने बोध, रचनात्मकता, सुन्दरता की शरीरविज्ञानी बुनियादों का और आधुनिक स्कूलिंग से होने वाले नुकसानों का अध्ययन किया। इस समय वे इन्हीं समझदारियों पर आधारित एक स्कूल विकसित करने में लगे हुए हैं।* (www.reimaginingschools.wordpress.com) */ बच्चों से सीखने के मुद्दे पर शिक्षकों और अभिभावकों की कार्यशालाएँ भी आयोजित करते हैं (www.awakeningaestheticawreness.blogspot.com) / उन्होंने एम.ए.सी.टी.,भोपाल से मेकैनिकल इंजीनियरिंग की डिग्री और एन.आइ.डी., अहमदाबाद से डिजाइन में स्नातकोत्तर डिग्री हासिल की है। उनसे jinankb@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। **अनुवादः** रमणीक मोहन*